बात चिकनाहट की

तेल की धार बढ़ाती भूली बिसरी फसलें

तेल और वसा मानव शरीर को पोषक तत्व और ऊर्जा प्रदान करते हैं। जनसंख्या में लगातार वृद्धि के कारण मांग और आपूर्ति में लगातार असंतुलन बना हुआ है। सीमांत और खराब भूमि जिसमें तिलहनी फसलें नहीं उगती हैं, ऐसी भूमि में अल्पप्रयुक्त तिलहनी फसलों को उगाकर खाद्य और अखाद्य तेलों के उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है। इस प्रकार अल्पप्रयुक्त तिलहनी फसलों को उगाने से तिलहन आयात में कमी के साथ-साथ सीमांत और गरीब किसानों की आर्थिक दशा में भी सुधार आयेगा। प्रस्तुत लेख में खाद्य और अखाद्य अल्प प्रयुक्त तिलहनी फसलों की खेती की जानकारी विस्तृत रूप में दी गई है।

तेल और वसा हमारे भोजन का एक विशेष भाग है जो हमारे शरीर को पोषक तत्व और ऊर्जा प्रदान करते हैं। भारत में तिलहनी फसलों का आर्थिक रूप से खाद्यान्न फसलों के बाद दूसरा स्थान आता है। इनमें से मुख्यत: नौ फसलों को हमारे खाद्यान्न तेल का स्रोत माना जाता है। विश्व में तेल उत्पादन में भारत का मुख्य स्थान है। शुरुआत में कुछ दशक पहले भारत एक तेल निर्यात देश के रूप में माना जाता था, उस समय हमारी खपत उत्पादन से कम थी, लेकिन 1980 के बाद जनसंख्या की वृद्धि तथा जीवन शैली में बदलाव के कारण वानस्पतिक तेलों की खपत ज्यादा होने लगी, जिससे मांग और आपूर्ति में अन्तर ज्यादा हो गया और हमें दूसरे देशों से आयात करना पड़ रहा है। भारत सरकार ने 1986 में तेल तकनीकी मिशन का गठन किया, जिससे 1992 तक हमारी तेल आत्मनिर्भरता 97 प्रतिशत तक पहुंच गईं लेकिन जनसंख्या वृद्धि और जीवनशैली में बदलाव से फिर से मांग और आपूर्ति का अंतर गहरा होता जा रहा है। हमारी मांग में 6 प्रतिशत वृद्धि प्रति वर्ष है, जबकि आपूर्ति की बढ़ोतरी 2 प्रतिशत प्रति वर्ष से भी कम है। इन सभी समस्याओं को देखते हुए वर्तमान में तिलहन उत्पादन बढ़ाने के हमारे पास दो ही रास्ते हैं : उत्पादन की क्षमता और क्षेत्रफल में वृद्धि या फिर अल्प प्रयुक्त फसलों को उगाकर तिलहनी फसलों के उत्पादन में वृद्धि करके देश की मांग और आपूर्ति की कमी को पूरी करें। वर्तमान की इन समस्याओं से निपटने के लिए विश्वव्यापी स्तर पर अल्प प्रयुक्त तिहलनी फसलों को एक विकल्प के रूप में देखा जा रहा है।

अल्प प्रयुक्त तिलहनी फसलें

अल्प प्रयुक्त तिलहनी फसलों को दो भागों में बांटा गया है, जो खाद्य तेल (भानजीरा, ऐसीटूनों) और अखाद्य तेल (तुम्बा, रतनजोत, जोजोबा) वाली अल्प प्रयुक्त फसलें, जिनका विवरण नीचे दिया गया है। ये फसलें मुख्य रूप से विपरीत परिस्थितियों और समस्या ग्रस्त भूमि पर भी उगायी जा सकती हैं। यदि इन तिलहनी फसलों पर उचित ध्यान दें तो ये छोटे और सीमांत किसानों के लिए वरदान साबित होंगी।

भानजीरा

अल्प प्रयुक्त खाद्य तिलहनी फसलें

भानजीरा

यह लेमेसी कुल का वार्षिक पौधा है, जो 4-6 फुट तक बढ़ता है। इसकी मुलायम पत्तियों व फूलों से रस निकालकर सुगंधित द्रव के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके बीजों से जो तेल प्राप्त होता है उसका खाने, जलाने, रंग, वार्निस व छपाई में प्रयोग किया जाता है। भानजीरा के बीजों में लगभग 45 प्रतिशत तेल व 23 प्रतिशत प्रोटीन होता है। भानजीरा प्राचीन काल से ही तिलहन के रूप में प्रयोग होता रहा है। भारत में हिमालय क्षेत्र में और असम के स्थानीय लोगों के द्वारा इसकी खेती की जाती है। वर्षा ऋतु में 5-7 कि.ग्रा. बीज प्रति हैक्टर की दर से कतार से कतार की दूरी 60 सें.मी. की दूरी पर बोया जाता है। जब पौधे लगभग 3 सें.मी. लम्बे हो जाते हैं तब छटनी करके पौधे से पौधे की दूरी 7-10 सें. मी. रखी जाती है। लगभग 5 महीने की फसल में फूल आने प्रारंभ हो जाते हैं, इसके पश्चात एक महीने में बीज बन जाते हैं। भानजीरा एक साथ नहीं पकती इसलिए इसकी कटाई एक बार में संभव नहीं है। इस प्रकार शिलोंग, रानीचौरी और पालमपुर केन्द्रों पर अखिल भारतीय समन्वित अल्प प्रयुक्त फसल अनुसंधान नेटवर्क के तहत शोध कार्य चल रहा है। भानजीरा का औसतन उत्पादन जापान में 16-17 क्विंटल प्रति हैक्टर के हिसाब से आंका गया है। एन.बी.पी.जी.आर. के क्षेत्रीय केन्द्र शिलौंग द्वारा स्थानीय जगह से एकत्रित जननद्रव्य से छंटाई करके उत्कृष्ट जननद्रव्य आई.

ऐसीटूनो

सी.-006441, आई.सी.-003913, आई.सी -211608, बी.डी.एस.-1647 और आई.सी -006447 में अधिक उत्पादन क्षमता पाई गई है।

ऐसीटूनो

इसको तिलहनी पेड़ों का राजा भी कहा जाता है। ये सदाबहार होने के साथ-साथ 15 मीटर ऊंचा होता है। इसकी उम्र 15-25 वर्ष होती है। इसके बीजों में 50-60 प्रतिशत खाद्य तेल होता है। यह दक्षिणी तथा मध्य भारत के सूक्ष्म व आर्द्रता वाले क्षेत्रों में खेती के लिए उपयुक्त पाया गया है। इसकी खेती के लिए नर्सरी में तैयार किये गये पौधों को 6 × 6 मीटर की दूरी पर 2 पेड़ प्रति गड्ढा लगा दिया जाता है, ताकि बाद में नर और मादा को 1:9 के अनुपात में रखा जा सके। ऐसीटूनो 4 वर्ष की उम्र में 3-5 मी. लंबा बढ़ जाता है और फल देने लगता है। शुरुआत के समय में 10-12 कि.ग्रा. बीज प्रति पेड़ उपज मिलती है जो 15 वर्ष की उम्र होने तक 40-45 कि.ग्रा. बीज/पेड़ (10-15 क्विंटल प्रति हैक्टर) तक हो जाती है। पकने पर बीज स्वयं छड़ जाते हैं जिन्हें इकट्ठा करके तेल निकाल लिया जाता है। ऐसीटूनो के बीजों में मौजूद विभिन्न तत्व सारणी में दिये गये हैं। इसका उत्पति, स्थान सैलवीडेरा और ब्राजील माना जाता है। यह पौधा भारत में पहली बार 1966 में एन.बी. पी.जी.आर. के क्षेत्रीय केन्द्र, अमरावती में लाया गया था।

ऐसीटूनो के बीजों व उनके छिलकों में विभिन्न पदार्थों की मात्रा

तत्व	मात्रा (प्रतिशत)	
	बीज	छिलका
तेल	61.82	2.80
नाइट्रोजन	3.10	1.01
माण्ड	0.97	2.27
घुलनशील शर्करा	4.52	7.22
इक्षु शर्करा	3.37	1.41
लघुकारक शर्करा	0.40	-
मुक्त अमीनो अम्ल	0.31	0.58
कुल फिनोल	0.40	19.36
ओडी फिनोल	0.01	0.30

अल्प प्रयुक्त अखाद्य तिलहनी फसलें

तुम्बा

तुम्बा कुकरविटैसी परिवार का बहुवर्षीय बेल रूपी पौधा है जो गरम और नरम स्थानों पर प्राकृतिक रूप में पाया जाता है। इसके फल गोल और पीले रंग के होते हैं। रेगिस्तान में रेत के टीलों को स्थिर रखने के लिए अधिक उगाया जाता है। रेगिस्तानी इलाकों में तुम्बे की दूर-दूर तक फैली बेलें रेत के क्षरण व उड़ने से रोकने में मुख्य भूमिका निभाती है। इसके बीजों में 20-25 प्रतिशत उच्च गुणीय तेल पाया जाता है, जो इस पौधे से आर्थिक लाभ का मुख्य स्रोत है। तुम्बा के फल के गूदे से मुरब्बा व अनेक दवाइयां बनाई जाती हैं। तुम्बा की खली और फल बकरियों के लिये पौष्टिक आहार के रूप में काम में लिया जाता है।

तुम्बा की उन्नत किस्म

जी.पी.-3 : यह अधिक उपज देने वाली किस्म है तथा इसके बीजों का रंग भूरा होता है। इसकी औसतन बीज उत्पादन की क्षमता 4.5-6 क्विंटल तथा इसके बीजों में तेल की मात्रा 25-27 प्रतिशत होती है।

मंशा मरूधरा (आर. एम.टी. 59) : यह किस्म राजस्थान के स्थानीय जगहों से इकट्ठा करके राजस्थान कृषि विश्वविद्यालय के शोध केन्द्र ए.आर.एस., मंडौर द्वारा विकसित की गयी है। यह किस्म राजस्थान और गुजरात के लिए उपयुक्त है तथा यह प्रजाति सभी प्रमुख रोगों और सूखे से प्रतिरोधिक क्षमता रखती है। इसकी औसत बीज उत्पादन क्षमता 2.38 क्विं. प्रति हैक्टर तथा फल उत्पादन की क्षमता 50 क्विं. प्रति हैक्टर है तथा इसके छिलका रहित बीजों में तेल की मात्रा 43 प्रतिशत पायी जाती है।

कैसे मिले अधिक पैदावार

भूमि और जलवायु : तुम्बा के लिए मरुस्थलीय रेतीली भूमि उपयुक्त होती है जिसमें बेलें आसानी से फैल जाती हैं। टीबों के नत्तोदर पार्श्व पर इसकी उत्पादक क्षमता अधिक पाई गई है। इस पौधे की सर्वाधिक आर्थिक उपादेयता 150-300 मि.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में है।

बुआई का समय : तुम्बा का बुआई मानसून की पहली वर्षा के बाद कर देनी चाहिए (जून- जुलाई)। बुआई से पहले बीजों को उपचारित करना चाहिए जिससे कि बीज आसानी से अंकुरित हो जायें।

बीजोपचार की विधि : तुम्बा के बीजों को पानी से भीगी हुई बोरी या टाट में लपेट कर भिगो देना चाहिए। भीगे हुए बीजों को डेढ़ फुट गहरे खड्ढे में दबा देना चाहिए। इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि गड्ढे पर थोड़ा पानी हमेशा डालते रहें जिससे बीज गीला रहे। 3-4 दिन के बाद बीजों को बोरी या टाट से बाहर निकालकर उसे अच्छी तरह रगड़कर हवा में सुखा लेना चाहिए। ऐसा करने से बीज की अंकुरण की क्षमता बढ़ जाती है।

बुआई की विधि : तुम्बा की बुआई दो तरीके से की जाती है। **बीजों द्वारा** : वर्षा होने के तुरंत बाद 3-3 मीटर दूर कतारों में 1-1 मी. की दूरी पर 2-3 उपचारित बीज 2 सें.मी. गहराई तक बो देना चाहिए। **पौध रोपण द्वारा** : मई के अन्तिम सप्ताह या जून के प्रथम सप्ताह में

तुम्बा

प्लास्टिक की थैली में रेत, काली मिट्टी तथा सड़ी हुई गोबर की खाद बराबर मात्रा में मिश्रण करके बो देना चाहिए। इसके बाद प्रत्येक थैली में 2-3 बीज को 2 सें.मी. गहरा बुआई कर पानी डाल देना चाहिए। आवश्यकता अनुसार पौधों में पानी देते रहें ताकि बीज का अंकुरण और पौधे की वृद्धि अच्छी हो जाये। बुआई के एक महीने बाद अच्छी वर्षा होने पर तैयार पौधों को 5-5 मी. की दूर कतारों में तथा 1-1 मी. की दूरी पर पौधों की रोपाई कर देनी चाहिए। पौध रोपण के बाद हल्के से पानी की सिंचाई कर देनी चाहिए जिससे कि पौध अच्छी तरह से जम जाये।

बीज की मात्रा : सीधी बुआई के लिए 500 ग्रा. बीज प्रति हैक्टर की दर से तथा पौध रोपण द्वारा 250 ग्रा. बीज प्रति हैक्टर की दर से आवश्यकता होती है।

मिश्रित खेती : बाजरा और मोठ के साथ तुम्बा लगाना लाभदायक होता है। तुम्बा की बेल फसलों की बढ़ोतरी में कोई रूकावट नहीं पहुंचाती बल्कि मृदा क्षरण को रोकती है और खेत में नमी बनाये रखती है। जिससे इन फसलों के लिए सहायक होती है।

फसल की कटाई और फलों की तुड़ाई: फल नवंबर में पक कर पीले पड़ने शुरू हो जाते हैं। अत: पहली तुड़ाई नवम्बर के अंत में तथा दूसरी तुड़ाई करीब एक माह पश्चात करनी चाहिए। तुड़ाई के बाद फलों को खेत में इकट्ठा करके भूमि में गड्ढा करके गाढ़ दें और करीब 20-25 दिन बाद फलों को सुखाकर और गलाकर बीज अलग कर लेना चाहिए।

उपज : तुम्बा का औसत बीज उत्पादन 3-5 क्विंटल प्रति हैक्टर होता है। पहले वर्ष में इसकी पैदावार कम होती है लेकिन इसके बाद अच्छी उपज मिलना शुरू हो जाती है।

रतनजोत

रतनजोत *(जट्रोफा करकस)* यूफोरबिएसी परिवार का एक झाड़ीनुमा पौधा है जो समुद्र तल से 1500 मी. की ऊंचाई तक समस्त भारत में प्राकृतिक रूप में पाया जाता है। इसकी पत्तियां अखाद्य होने के कारण इसे बाड़ के रूप में या मिट्टी का कटाव रोकने के लिए जल निकास मार्गों तथा जल भरांश क्षेत्रों में उगाया जाता है।

रतनजोत की उपयोगिता

रतनजोत एक बहुपयोगी पौधा है, जिसका प्रत्येक भाग किसी न किसी रूप में प्रयोग किया जाता है। पारंपरिक तौर पर इसकी कोमल शाखाएं दांतों को साफ करने, पत्तियों का रस चर्मरोग, पाइल्स, बुखार, हैज़ा आदि में, जड़ का दूध सर्पदंश के उपचार में, तने का दूध घाव भरने के लिए तथा फूलों का रस स्त्रियों में गर्भ गिराने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। इसके बीजों में 45-58 प्रतिशत तेल की मात्रा पाई जाती है। रतनजोत का तेल बिना महक वाला व रंगरहित होता है, इसलिए यह वार्निश, सौंदर्य प्रसाधन, साबुन, मोमबत्ती, ल्यूबरीकैन्ट, दवाइयों व कीटनाशक आदि तैयार करने में प्रयुक्त होता है। यह जलने पर धुआं नहीं देता, इसकी विस्कासिटी कम होती है तथा यह एल्कोहोल में घुलनशील होता है। इसलिए इसे ट्रांसएस्ट्रफिकेशन के उपरांत 'बायोडीजल' के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। रतनजोत के तेल से उत्पादित 'बायोडीजल' पेट्रोलियम से उत्पादित डीजल की तुलना में 80 प्रतिशत कम प्रदूषण फैलाता है। देश में पेट्रोलियम पदार्थों की मांग व पैदावार में बढ़ते अंतर और अंतर्राष्ट्रीय बाजार में पेट्रोलियम पदार्थों की आसमान छूती कीमतों के मद्देनजर रतनजोत के तेल को भावी डीजल स्रोत के रूप में देखा जा रहा है।

उन्नत किस्म एस.डी.ए.यू.जे.-1 (छत्रपति)

अखिल भारतीय समन्वित अल्प प्रयुक्त फसल अनुसंधान नेटवर्क के तहत् रतनजोत की पहली किस्म एस.डी.ए.यू.जे.-1 की खेती करने के लिए अनुमोदन किया गया और फसल की सेन्ट्रल सब-कमेटी ने 20 नवम्बर, 2006 में रिलीज किया। यह प्रजाति सभी प्रमुख रोगों से प्रतिरोधिकता क्षमता रखती है। यदि वातावरण के तापमान में उतार-चढ़ाव आता है तो रूट-रॉट रोग का प्रभाव पड़ता है। जिसकी रोकथाम के लिए एक प्रतिशत का बोर्डो मिश्रण का छिड़काव करना चाहिए।

कैसे मिले अधिक पैदावार

जलवायु तथा भूमि का चयन : रतनजोत की खेती यूं तो समुद्रतट से लेकर 1500 मी. की ऊंचाई तक सभी प्रकार की जलवायु में की जा सकती है, परंतु अच्छी बढ़वार और पैदावार के लिए 300-400 मि.मी. वार्षिक वर्षा वाली अर्द्धशुष्क जलवायु उपयुक्त मानी जाती है। प्रकृति में यह पौधा पथरीली व रेतीली पहाड़ियों पर भी उगता पाया जाता है। अत: किसी भी प्रकार की भूमि जहां पानी अधिक समय तक न ठहरता हो, रतनजोत की खेती के योग्य है।

नर्सरी तैयार करना : नर्सरी में बीज की बुआई के लिए 15 जून से 15 जुलाई का समय उपयुक्त पाया गया है। यदि कटिंग या ग्राफ्टिंग से पौधे तैयार करने हों तो वर्षा ऋतु के आरंभ का समय उत्तम रहता है।

बीज द्वारा नर्सरी तैयार करने के दो तरीके हैं- क्यारियों में या पॉलीथीन की थैलियों में। क्यारियों में पौध तैयार करने के लिए लगभग एक मीटर चौड़ी क्यारियां बना लेते हैं, जिन्हें मिट्टी चढ़ाकर जमीन से लगभग 15 सें.मी. ऊंचा कर लेते हैं ताकि पानी न ठहरे। क्यारियों की सतह का कठोरपन दूर करने तथा पोषण के लिए उसमें गोबर की खाद मिला देते हैं और वर्षा के आरंभ होने से पहले बीज को 24 घंटे तक भिगो कर फिर 3-4 सें.मी. की गहराई पर लगभग 10×10 सें.मी. की दूरी पर लाइनों में बुआई कर देते हैं। पालिथीन की थैलियों में पौध तैयार करने के लिए 6×4 इंच की थैलियां लेकर वायु के आवागमन तथा पानी की निकासी हेतु उनमें 8-10 छिद्र कर देते हैं। मिट्टी तथा गोबर की खाद को बराबर मात्रा में मिलाकर थैलियों में भर देते हैं। थैलियों का ऊपरी 1 इंच हिस्सा सिंचाई में सुविधा के लिए खाली छोड़ देते हैं। 24 घंटे तक बीज को भिगोकर 2 बीज प्रति थैली 3-4 सें.मी. गहराई पर बुआई करके अंकुरण होने तक हल्की सिंचाई करते हैं।

कटिंग द्वारा पौध तैयार करने के लिए वर्षा ऋतु के आरम्भ में स्वस्थ पौधों से लगभग 1-1 फुट लंबी टहनियां काट कर उन्हें नर्सरी या

रतनजोत

पालीथीन की थैलियों में लगा दें तथा नये पत्ते व जड़ें निकलने तक हल्की सिंचाई करें।

पौधारोपण कब और कैसे करें: जून-जुलाई में डाली गई नर्सरी में रतनजोत के पौधे सितम्बर-अक्टूबर तक तैयार हो जाते हैं, जो कि पौधारोपण के लिए भी उपयुक्त समय होता है।

पौधारोपण से पहले गर्मी के मौसम में 2X2 मी. की दूरी पर 30 सें.मी. गोलाई वाले तथा 30 सें.मी. गहरे गड्ढे तैयार करें तथा 5 कि.ग्रा. गोबर की खाद प्रत्येक गड्ढे में मिट्टी में मिला दें। पौधारोपण से ठीक पहले 50 ग्रा. यूरिया, 60 ग्रा. सिंगल सुपर फॉस्फेट तथा 15 ग्रा. म्यूरिएट आफ पोटाश प्रत्येक गड्ढे में डालकर मिट्टी में मिला दें और सितम्बर में पहले से तैयार पौधे गड्ढों में रोपकर हल्की सिंचाई करें। 15-20 दिन बाद जिन गड्ढों के पौधों में नई बढ़वार आरंभ न हुई हो, दोबारा रोपाई कर दें।

छंटाई कब और कैसे करें : रतनजोत के पौधों में शीत ऋतु तथा ग्रीष्म ऋतु में पतझड़ होता है, जो कि छंटाई के लिए उपयुक्त समय रहता है। पौधारोपण के एक वर्ष बाद जब पतझड़ आए तब लगभग जमीन से 9 इंच ऊपर से काट दें। इससे अधिक शाखाएं निकलने में सहायता मिलती है। इसके बाद रोपाई के तीसरे वर्ष से शाखाओं का ऊपरी 2/3 हिस्सा काट दें तथा 1/3 रख लें, ताकि नई शाखाएं निकल सकें क्योंकि नई शाखाओं पर ज्यादा फल लगते हैं।

बीज की तुड़ाई : रतनजोत का पौधा दो वर्ष बाद ही फल देना आरंभ कर देता है। दो वर्ष के पौधे से 1-1.5 कि.ग्रा. फल प्राप्त होते हैं, जिनमें से 400-500 ग्रा. बीज निकलते हैं। पांच वर्ष की उम्र के बाद यह पैदावार बढ़कर 5-10 कि.ग्रा. फल या 2-5 कि.ग्रा. बीज प्रति पौधा हो जाती है। रतनजोत के फल अक्टूबर में पकने शुरू होते हैं और दिसम्बर तक पकते रहते हैं। जिन्हें खराब होने से बचाने के लिए समय- समय पर तोड़ते रहना चाहिए।

उपज : भारत में रतनजोत से बीज की औसत पैदावार 3-5 क्विंटल प्रति हैक्टर मिलती है परन्तु यदि सही किस्म का चयन करके उन्नत सस्य क्रियाएं अपनाई जाएं तो पैदावार 15-20 क्विंटल प्रति हैक्टर तक बढ़ सकती है।

जोजोबा

जोजोबा एक सदाबहार दक्षिणी ऐरीजोना के अर्धशुष्क क्षेत्रों, दक्षिणी कैलीफोर्निया और पश्चिमी उत्तर मैक्सिको में एक प्रकार की स्थाई झाड़ी है। यह आमतौर पर 10-15 फुट की ऊंची झाड़ी होती हैं। जोजोबा के आमतौर पर नर और मादा फूल अलग-अलग पौधों पर होते हैं। मादा फूल छोटे हरे तथा नर फूल पीले और बड़े होते हैं। इसमें परागण हवा या कीट के द्वारा होता है। एक फल जो हरे कैप्सूल के समान होता है, जिसमें तीन बीज होते हैं। बीज उत्पादन आमतौर पर चार वर्ष के बाद प्रारंभ होता है। आज जोजोबा की 40,000 एकड़ जमीन पर पश्चिमी अमेरिका में खेती होती है जो एक कठोर रेगिस्तान वातावरण में जीवित रहने की क्षमता का परिणाम है। सीमांत भूमि पर खेती करके कृषि व्यवस्था में इसका बहुत बड़ा योगदान हो सकता है। अमेरिका प्रति वर्ष हजारों टन जोजोबा तेल जापान और यूरोप को निर्यात करता है। भारत में सीमान्त और बरानी भूमि का उपयोग करने के लिए भारत सरकार ने राजस्थान, गुजरात और उड़ीसा को मिलाकर 1994 में एक सोसाएटी को गठन किया जिसका नाम 'ए.जे.ओ.आर.पी.' रखा गया। इस सोसाएटी ने 50-100 हैक्टर भूमि पर जोजोबा के फार्म स्थापित किये।

उपयोगिता

जोजोबा तेल के द्वारा उत्पादक सौंदर्य प्रशाधन और बाल की देखभाल उत्पादों को उच्च कीमत पर बेचा जाता है। जोजोबा के तेल से सुपर मौस्चाइजर बनाये जाते हैं जो त्वचा पर बेहतर महसूस होता है। जोजोबा का तेल मेकअप हटाने के काम में लिया जाता है क्योंकि ये त्वचा को कोई नुकसान नहीं पहुंचाता। सूखे होंठों पर जोजोबा का तेल लगाने से होंठ मुलायम रहते हैं। जोजोबा का तेल सैम्पू बनाने के लिए भी काम में लिया जाता है और सिर में रूसी को रोकने में मदद करता है। इसके तेल से बनाये हुई सेबिंग क्रीम अधिक झाग देती है और दाढ़ी की त्वचा को आराम पहुंचाती है। जोजोबा के बीज से तेल निकाला हुआ घावों को भरने के लिए प्रयोग किया जाता है और एंटीबायोटिक दवाओं में भी एक एजेंट के रूप में भी इसका इस्तेमाल किया जाता है। इसके तेल को जैविक ईंधन के रूप में भी प्रयोग किया जाता है।

जोजोबा की उन्नत किस्में

ई.सी.-33198 : अधिक उत्पादन के लिए और सूखा प्रतिरोधी होने वाली किस्म के एन.बी.पी.जी.आर. क्षेत्रीय केन्द्र, जोधपुर द्वारा विकसित किया गया है। इसकी बीज की उत्पादन की क्षमता 5 क्विंटल प्रति हैक्टर है।

कैसे मिले अधिक पैदावार

जलवायु : जोजोबा के पौधे के लिए अत्यधिक ठंड और गर्मी दोनों ही हानिकारक होती हैं लेकिन 50^0-55^0 से. तापमान तक को सहन कर सकता है। लंबे पौधों को ठंड अधिक नुकसान नहीं पहुंचाती लेकिन उपज कम कर सकती है। इस पौधे से सर्वाधिक आर्थिक लाभ 50-60 सें.मी. वर्षा वाले क्षेत्रों में है। सिंचाई करने से वानस्पतिक वृद्धि अधिक होती है लेकिन यह जरूरी नहीं है कि वृद्धि से बीज उत्पादन अधिक हो। ज्यादा सर्दी और बसंत के दौरान सबसे अधिक पानी की आवश्यकता होती है।

भूमि का चयन : जोजोबा करीबन सभी प्रकार के मिट्टी में उगाया जा सकता है। पानी का ठहराव और बाढ़ दोनों ही जोजोबा पौधे को नुकसान पहुंचा सकती हैं। इसको 5-8 पी-एच मान वाली भूमि में उगाया जा सकता है। अत: जोजोबा की अम्लीय और क्षारीय भूमि में भी खेती की जा सकती है।

नर्सरी तैयार करना : नर्सरी में बीज की बुआई के लिए अक्टूबर और मार्च का समय उपयुक्त पाया गया है। यदि कटिंग या ग्राफ्टिंग से पौधे तैयार करने हों तो वर्षा ऋतु के आरंभ का समय उत्तम रहता है। कटिंग द्वारा पौध तैयार करने के लिए वर्षा ऋतु के आरंभ में स्वस्थ पौधों से लगभग 1-1 फुट लम्बी टहनियां काटकर उन्हें नर्सरी या पॉलीथीन की थैलियों (23X10

जोजोबा

(शेष पृष्ठ 12 पर)

(पृष्ठ 6 का शेष)

तेल की धार.....

सें.मी.) में लगा दें तथा नये पत्ते व जड़ें निकलने तक हल्की सिंचाई करें।

कैसे करें पौधारोपण : बीज की बुआई के लिए कतार से कतार की दूरी 4 मी. और पौधे से पौधे की दूरी 1 मी. के अंतराल पर दो बीज प्रति खड्ढे के हिसाब से लगा देना चाहिए। कटिंग द्वारा तैयार किये गये पौधे कतार से कतार 4-4 मी. तथा पौधे से पौधे 2 मी. की दूरी पर खड्ढे में लगा देने चाहिए तथा नर और मादा पौधों का अनुपात 1:10 के हिसाब से रखना चाहिए।

उपज : पौध द्वारा तैयार पौधे 4 साल में 50 ग्रा. प्रति पौधा के हिसाब से उपज देता है। 10 साल के बाद में औसतन उत्पादन 1 कि.ग्रा. बीज प्रति पौधा उत्पादन देता है। कटिंग द्वारा तैयार किये गये पौधे 250-300 ग्रा. बीज प्रति पौधा तथा 10 साल के बाद 3-5 कि.ग्रा. बीज उत्पादन देता है।

आज भारत चीन के बाद दूसरा विश्व का सबसे बड़ा तिलहन आयतक है। 2005-06 में देश में 71 लाख टन तेल का उत्पादन हुआ जो 2006-07 में घटकर 68 लाख टन रह गया, जबकि इसी अवधि में खाद्य तेल खपत 123 लाख टन से बढ़कर 125 लाख टन हो गई। विश्व में पेट्रोल पदार्थों के बढ़ते मूल्य से मुक्ति पाने के लिए बायोडीजल पर जोर दिया जाने लगा। आज विश्व भर में बायोडीजल के कारखाने तेजी से लग रहे हैं और खाद्य तेल को भी जैविक ईंधन में बदलने से विश्व में खाद्य तेल की आपूर्ति में कमी आने लगी। इसके विपरीत मांग में लगातार वृद्धि हो रही है ऐसी स्थिति में मांग और आपूर्ति में असंतुलन आ गया, जिसका प्रभाव हमारे आयात पर पड़ता है। भारत सरकार ने तेल के क्षेत्र में आत्म निर्भरता प्राप्त करने के लिए पीली क्रान्ति का उदघोष किया, जिससे तिलहन उत्पादन में वृद्धि तो हुई लेकिन मांग और आपूर्ति में अंतर काफी बना रहा इसलिए ऐसी स्थिति में सीमांत और खराब भूमि पर, जिसमें मुख्य तिलहन फसलें नहीं हो सकती उस भूमि में अल्पप्रयुक्त तिलहनी फसलों को उगाकर खाद्य और अखाद्य तेलों के उत्पादन में वृद्धि की जा सकती है।

डा. एच.एल. रैगर, डा. बी.एस. फौगाट
और **डा. आर.पी. दुआ**
अखिल भारतीय समन्वित अल्प प्रयुक्त फसल अनुसंधान नेटवर्क, राष्ट्रीय पादप आनुवंशिकी संसाधन ब्यूरो, नई दिल्ली 110012